****

Maithili Sharan Gupt

**Born** 1886

**Died** 1964

**Poetry:**

**कहती हुई बहु भाँति यों ही भारती करुणामयी**

फिर भी मूर्छित अहो वह दु:खिनी विधवा नई,  
कुछ देर को फिर शोक उसका सो गया मानो वहाँ,  
हतचेत होना भी विपद में लाभदायी है महा॥  
उस समय ही कृष्णा, सुभद्रा आदि पाण्डव-नारियाँ,  
मनो असुर-गण-पीड़िता सुरलोक की सुकुमारियाँ,  
करती हुईं बहु भाँति क्रंदन आ गईं सहसा वहाँ,  
प्रत्यक्ष ही लक्षित हुआ तब दु:ख दुस्सह-सा वहाँ|  
विचलित न देखा था कभी जिनको किसी ने लोक में,  
वे नृप युधिष्ठिर भी स्वयं रोने लगे इस शोक में|  
गाते हुए अभिमन्यु के गुण भाइयों के संग में,  
होने लगे वे मग्न-से आपत्ति-सिन्धु-तरंग में||  
"इस अति विनश्वर-विश्व में दुःख-शोक कहते हैं किसे?  
दुःख भोगकर भी बहुत हमने आज जाना है इसे,  
निश्चय हमें जीवन हमारा आज भारी हो गया,  
संसार का सब सुख हमारा आज सहसा खो गया|  
हा! क्या करें? कैसे रहे? अब तो रहा जाता नहीं,  
हा! क्या कहें? किससे कहें? कुछ भी कहा जाता नहीं|  
क्योंकर सहें इस शोक को? यह तो सहा जाता नहीं;  
हे देव, इस दुःख-सिन्धु में अब तो बहा जाता नहीं||  
जिस राज्य के हित शत्रुओं से युद्ध है यह हो रहा,  
उस राज्य को अब इस भुवन में कौन भोगेगा अहा!  
हे वत्सवर अभिमयु! वह तो था तुम्हारे ही लिए,  
पर हाय! उसकी प्राप्ति के ही समय में तुम चल दिए!

**जितना हमारे चित्त को आनंद था तुमने दिया**

हा! अधिक उससे भी उसे अब शोक से व्याकुल किया|  
हे वत्स बोलो तो ज़रा, सम्बन्ध तोड़ कहाँ चले?  
इस शोचनीय प्रसंग में तुम संग छोड़ कहाँ चले?  
सुकुमार तुमको जानकर भी युद्ध में जाने दिया,  
फल योग्य ही हे पुत्र! उसका शीघ्र हमने पा लिया||  
परिणाम को सोच बिना जो लोग करते काम हैं;  
वे दुःख में पड़कर कभी पाते नहीं विश्राम हैं||  
तुमको बिना देखे अहो! अब धैर्य हम कैसे धरें?  
कुछ जान पड़ता है नहीं हे वत्स! अब हम क्या करें?  
है विरह यह दुस्सह तुम्हारा हम इसे कैसे सहें?  
अर्जुन, सुभद्रा, द्रौपदी से हाय! अब हम क्या कहें?"  
हैं ध्यान भी जिनका भयंकर जो न जा सकते कहे,  
यद्यपि दृढ़-व्रत पाण्डवों ने थे अनेकों दुःख सहे,  
पर हो गए वे हीन-से इस दुःख के सम्मुख सभी,  
अनुभव बिना जानी न जाती बात कोई भी कभी||  
यों जान व्याकुल पाण्डवों को व्यास मुनि आए वहाँ -  
कहने लगे इस भाँति उनसे वचन मन भाये वहाँ -  
"हे धर्मराज! अधीर मत हो, योग्य यह तुमको नहीं,  
कहते भले क्या विधि-नियम पर मोह ज्ञानीजन कहीं?"  
यों बादरायण के वचन सुन, देखकर उनको तथा,  
कहने लगे उनसे युधिष्ठिर और भी पाकर व्यथा -  
"धीरज धरूँ हे तात कैसे? जल रहा मेरा हिया,  
क्या हो गया यह हाय! सहसा दैव ने यह क्या किया?

जो सर्वदा ही शून्य लगाती आज हम सबको धरा,  
जो नाथ-हीन अनाथ जग में हो गई है उत्तरा|  
हूँ हेतु इसका मुख्य मैं ही हा! मुझे धिक्कार है,  
मत धर्मराज कहो मुझे, यह क्रूर-जन भू-भार है||  
है पुत्र दुर्लभ सर्वथा अभिमन्यु-सा संसार में,  
थे सर्व गुण उस धर्मधारी धीर-वीर कुमार में|  
वह बाल होकर भी मृदुल, अति प्रौढ़ था निज काम में,  
बातें अलौकिक थीं सभी उस दिव्य शोभा-धाम में||  
क्या रूप में, क्या शक्ति में, क्या बुद्धि में, क्या ज्ञान में,  
गुणवान वैसा अन्य जन आता नहीं है ध्यान में|  
पर हाय! केवल रह गई है अब यहाँ उसकी कथा,

**धिक्कार है संसार की निस्सारता को सर्वथा**

प्रति दिवस जो इस समय आकर मोदयुत संग्राम से,  
करता हृदय मेरा मुदित था भक्ति-युक्त प्रणाम से|  
हा! आज वह अभिमन्यु मेरा मृतक भू पर है पड़ा,  
होगा कहो मेरे लिए क्या कष्ट अब इससे बड़ा?  
करने पड़ेंगे यदपि अब भी काम सब जग में हमें,  
चलना पड़ेगा यदपि अब भी विश्व के मग में हमें,  
सच जानिए पर अब न होगा हृदय लीन उमंग में,  
सुख की सभी बातें गईं सौभद्र के ही संग में||  
उस के बिना अब तो हमें कुछ भी सुहाता है नहीं,  
हा! क्या करें हा हृदय दुःख से शान्ति पाता है नहीं|  
था लोक आलोकित उसी से, अब अँधेरा है हमें,  
किस दोष से दुर्दैव ने इस भाँति घेरा है हमें||

अब भी मनोरम मूर्ति उसकी फिर रही है सामने,  
पर साथ ही दुःख की घटा भी घिर रही है सामने,  
हम देखते हैं प्रकट उसको किंतु पाते हैं नहीं,  
हा! स्वप्न के वैभव किसी के काम आते हैं नहीं||  
कैसी हुई होगी अहो! उसकी दशा उस काल में -  
जब वह फँसा होगा अकेला शत्रुओं के जाल में?  
बस वचन ये उसने कहे थे अंत में दुःख से भरे -  
"निरुपाय तब अभिमन्यु यह अन्याय से मरता हरे! -  
कहकर वचन कौन्तेय यों फिर मौन दुःख से हो गए,  
दृग-नीर से तत्काल युग्म कपोल उनके धो गए|  
तब व्यास मुनि ने फिर उन्हें धीरज बँधाया युक्ति से,  
आख्यान समयोचित सुनाये विविध उत्तम युक्ति से|  
उस समय ही ससप्तकों को युद्ध में संहार के,  
लौटे धनञ्जय विजय का आनंद उर में धार के|  
होने लगे पर मार्ग में अपशकुन बहु बिध जब उन्हें,  
खलने लगी अति चित्त में चिंता कुशल की तब उन्हें||  
कुविचार बारम्बार उनके चित्त में आने लगे,  
आनंद और प्रसन्नता के भाव सब जाने लगे|  
तब व्यग्र होकर वचन वे कहने लगे भगवान से,  
होगी न आतुरता किसे आपत्ति के अनुमान से?  
"हे मित्र? मेरा मन न जाने हो रहा क्यों व्यस्त है?  
इस समय पल पल में मुझे अपशकुन करता त्रस्त है|  
तुम धर्मराज समीप रथ को शीघ्रता से ले चलो,  
भगवान! मेरे शत्रुओं की सब दुराशाएँ डालो??"

**बहु भाँति तब सर्वग्य हरि ने शीघ्र समझाया उन्हें**

सुनकर मधुर उनके वचन संतोष कुछ आया उन्हें|  
पर स्वजन चिंता-रज्जु बंधन है कदापि न टूटता,  
जो भाव जम जाता हृदय में वह न सहसा छूटता||  
करते हुए निज चित्त में नाना विचार नए-नए,  
निज भाइयों के पास आतुर आर्त अर्जुन आ गए|  
तप-तप्त तरुओं के सदृश तब देख कर तापित उन्हें,  
आकुल हुए वे और भी कर कुशल विज्ञापित उन्हें||  
अवलोकते ही हरि-सहित अपने समक्ष उन्हें खड़े,  
फिर धर्मराज विषाद से विचलित उसी क्षण हो पड़े|  
वे यत्न से रोके हुए शोकाश्रु फिर गिरने लगे,  
फिर दुःख के वे दृश्य उनकी दृष्टि में फिरने लगे||  
कहते हुए कारुण्य-वाणी दीन हो उस काल में,  
देखे गए इस भाँति वे जलते हुए दुःख ज्वाल में|  
व्याकुल हुए खग-वृन्द के चीत्कार से पूरित सभी -  
दावाग्नि-कवलित वृक्ष ज्यों देता दिखाई है कभी||  
"हे हे जनार्दन! आपने यह क्या दिखाया है हमें?  
हे देव! किस दुर्भाग्य से यह दुःख आया हैं हमें?  
हा आपके रहते हुए भी आज यह क्या हो गया?  
अभिमन्यु रुपी रत्न जो सहसा हमारा खो गया||  
निज राज्य लेने से हमें हे तात! अब क्या काम है?  
होता अहो! फिर व्यर्थ ही क्यों यह महा-संग्राम है!  
क्या यह हमारी हानि भारी, राज्य से मिट जाएगी?  
त्रैलोक्य की भी सम्पदा उस रत्न को क्या पाएगी?

मेरे लिए ही भेद करके व्यूह द्रोणाचार्य का;  
मारे सहस्रों शूर उसने ध्यान धर प्रिय कार्य का;  
पर अंत में अन्याय से निरुपाय होकर के वहाँ -  
हा हन्त! वो हत हो गया, पाऊँ उसे मैं अब कहाँ?  
उद्योग हम सबने बहुत उसको बचाने का किया,  
पर खल जयद्रथ ने हमें भीतर नहीं जाने दिया|  
रहते हुए भी सो हमारे, युद्ध में वह हत हुआ,  
अब क्या रहा सर्वस्व ही हा! हा! हमारा गत हुआ,  
पापी जयद्रथ पार उससे जब न रण में पा सका|  
उस वीर के जीते हुए सम्मुख न जब वह जा सका|  
तब मृतक उसको देख सर पर पैर रक्खा नीच ने,  
हा! हा! न यों मनुजत्व को भी स्मरण रक्खा नीच ने||  
श्रीकृष्ण से जब ज्येष्ठ पाण्डव थे वचन यों कह रहे,  
अर्जुन हृदय पर हाथ रक्खे थे महा-दुःख सह रहे|  
'हा पुत्र!' कहकर शीघ्र ही फिर वे मही पर गिर पड़े;  
क्या वज्र गिरने पर बड़े भी वृक्ष रह सकते खड़े?  
जो शस्त्र शत-शत शत्रुओं के सहन करते थे कड़े,  
वे पार्थ ही इस शोक के आघात से जब गिर पड़े;  
तब और साधारण जनों के दुःख की है क्या कथा?

**होती अतीव अपार है सुत-शोक की**

यों देख भक्तों को प्रपीड़ित शोक के अति भार से,  
कुछ द्रवित अच्युत भी हुए कारुण्य के संचार से!  
तल-मध्य-अनल-स्फोट से भूकंप होता है जहाँ,  
होते विकंपित से नहीं क्या अचल भूधर भी वहाँ?

वाचक ! प्रथम सर्वत्र ही ‘जय जानकी जीवन’ कहो,   
फिर पूर्वजों के शील की शिक्षा तरंगों में बहो।  
दुख, शोक, जब जो आ पड़े, सो धैर्य पूर्वक सब सहो,   
होगी सफलता क्यों नहीं कर्त्तव्य पथ पर दृढ़ रहो।।  
अधिकार खो कर बैठ रहना, यह महा दुष्कर्म है;  
न्यायार्थ अपने बन्धु को भी दण्ड देना धर्म है।  
इस तत्व पर ही कौरवों से पाण्डवों का रण हुआ,  
जो भव्य भारतवर्ष के कल्पान्त का कारण हुआ।।  
सब लोग हिलमिल कर चलो, पारस्परिक ईर्ष्या तजो,  
भारत न दुर्दिन देखता, मचता महाभारत न जो।।  
हो स्वप्नतुल्य सदैव को सब शौर्य्य सहसा खो गया,  
हा ! हा ! इसी समराग्नि में सर्वस्व स्वाहा हो गया।  
दुर्वृत्त दुर्योधन न जो शठता-सहित हठ ठानता,  
जो प्रेम-पूर्वक पाण्डवों की मान्यता को मानता,  
तो डूबता भारत न यों रण-रक्त-पारावार में,  
‘ले डूबता है एक पापी नाव को मझधार में।’  
हा ! बन्धुओं के ही करों से बन्धु-गण मारे गये !  
हा ! तात से सुत, शिष्य से गुरु स-हठ संहारे गये।  
इच्छा-रहित भी वीर पाण्डव रत हुए रण में अहो।  
कर्त्तव्य के वश विज्ञ जन क्या-क्या नहीं करते कहो ?  
वह अति अपूर्व कथा हमारे ध्यान देने योग्य है,  
जिस विषय में सम्बन्ध हो वह जान लेने योग्य है।   
अतएव कुछ आभास इसका है दिया जाता यहाँ,  
अनुमान थोड़े से बहुत का है किया जाता यहाँ।।  
रणधीर द्रोणाचार्य-कृत दुर्भेद्य चक्रव्यूह को,  
शस्त्रास्त्र, सज्जित, ग्रथित, विस्तृत, शूरवीर समूह को,  
जब एक अर्जुन के बिना पांडव न भेद कर सके,   
तब बहुत ही व्याकुल हुए, सब यत्न कर करके थके।।  
यों देख कर चिन्तित उन्हें धर ध्यान समरोत्कर्ष का,  
प्रस्तुत हुआ अभिमन्यु रण को शूर षोडश वर्ष का।  
वह वीर चक्रव्यूह-भेदने में सहज सज्ञान था,  
निज जनक अर्जुन-तुल्य ही बलवान था, गुणवान था।।  
‘‘हे तात् ! तजिए सोच को है काम क्या क्लेश का ?   
मैं द्वार उद्घाटित करूँगा व्यूह-बीच प्रवेश का।।’’  
यों पाण्डवों से कह, समर को वीर वह सज्जित हुआ,   
छवि देख उसकी उस समय सुरराज भी लज्जित हुआ।।

नर-देव-सम्भव वीर वह रण-मध्य जाने के लिए

**बोला वचन निज सारथी से रथ सजाने के लिए**

यह विकट साहस देख उसका, सूत विस्मित हो गया,  
कहने लगा इस भाँति फिर देख उसका वय नया-  
‘‘हे शत्रुनाशन ! आपने यह भार गुरुतर है लिया,  
हैं द्रोण रण-पण्डित, कठिन है व्यूह-भेदन की क्रिया।  
रण-विज्ञ यद्यपि आप हैं पर सहज ही सुकुमार हैं,  
सुख-सहित नित पोषित हुए, निज वंश-प्राणाधार हैं।’’  
सुन सारथी की यह विनय बोला वचन वह बीर यों-  
करता घनाघन गगन में निर्घोष अति गंभीर ज्यों।  
‘‘हे सारथे ! हैं द्रोण क्या, देवेन्द्र भी आकर अड़े,  
है खेल क्षत्रिय बालकों का व्यूह-भेदन कर लड़े।  
श्रीराम के हयमेध से अपमान अपना मान के,  
मख अश्व जब लव और कुश ने जय किया रण ठान के।।  
अभिमन्यु षोडश वर्ष का फिर क्यों लड़े रिपु से नहीं,  
क्या आर्य-वीर विपक्ष-वैभव देखकर डरते कहीं ?  
सुनकर गजों का घोष उसको समझ निज अपयश –कथा,  
उन पर झपटता सिंह-शिशु भी रोषकर जब सर्वथा,   
फिर व्यूह भेदन के लिए अभिमन्यु उद्यत क्यों न हो,  
क्य वीर बालक शत्रु की अभिमान सह सकते कहो ?  
मैं सत्य कहता हूँ, सखे ! सुकुमार मत मानो मुझे,  
यमराज से भी युद्ध को प्रस्तुत सदा जानो मुझे !  
है और की तो बात ही क्या, गर्व मैं करता नहीं,  
मामा तथा निज तात से भी समर में डरता नहीं।।

ज्यों ऊनषोडश वर्ष के राजीव लोचन राम ने,   
मुनि मख किया था पूर्ण वधकर राक्षसों के सामने।  
कर व्यूह-भेदन आज त्यों ही वैरियों को मार के,  
निज तात का मैं हित करूँगा विमल यश विस्तार के।।’’  
यों कह वचन निज सूत से वह वीर रण में मन दिए,  
पहुँचा शिविर में उत्तरा से विदा लेने के लिए।  
सब हाल उसने निज प्रिया से जब कहा जाकर वहाँ,  
कहने लगी वह स्वपति के अति निकट आकर वहाँ-  
‘‘मैं यह नहीं कहती कि रिपु से जीवितेश लड़ें नहीं,  
तेजस्वियों की आयु भी देखी भला जाती कहीं ?  
मैं जानती हूँ नाथ ! यह मैं मानती हूँ तथा-  
उपकरण से क्या शक्ति में हा सिद्धि रहती सर्वथा।।’’  
‘‘क्षत्राणियों के अर्थ भी सबसे बड़ा गौरव यही-  
सज्जित करें पति-पुत्र को रण के लिए जो आप ही।   
जो वीर पति के कीर्ति-पथ में विघ्न-बाधा डालतीं-  
होकर सती भी वह कहाँ कर्त्तव्य अपना पालतीं ?  
अपशकुन आज परन्तु मुझको हो रहे सच जानिए,  
मत जाइए सम्प्रति समर में प्रर्थना यह मानिए।  
जाने न दूँगी आज मैं प्रियतम तुम्हें संग्राम में,   
उठती बुरी है भावनाएँ हाय ! इस हृदाम में।  
है आज कैसा दिन न जाने, देव-गण अनुकूल हों;  
रक्षा करें प्रभु मार्ग में जो शूल हों वे फूल हों।  
कुछ राज-पाट न चाहिए, पाऊँ न क्यों मैं त्रास ही;  
हे उत्तरा के धन ! रहो तुम उत्तरा के पास ही।।

**कहती हुई यों उत्तरा के नेत्रजल से भर गये**

हिम के कणों से पूर्ण मानो हो गये पंकज नये।   
निज प्राणपति के स्कन्ध पर रखकर वदन वह सुन्दरी,   
करने लगी फिर प्रार्थना नाना प्रकार व्यथा-भरी।।  
यों देखकर व्याकुल प्रिया को सान्त्वना देता हुआ,  
उसका मनोहर पाणि-पल्लव हाथ में लेता हुआ,  
करता हुआ वारण उसे दुर्भावना की भीति से,  
कहने लगा अभिमन्यु यों प्यारे वचन अति प्रीति से-  
‘‘जीवनमयी, सुखदायिनी, प्राणाधिके, प्राणप्रिये !  
कातर तुम्हें क्या चित्त में इस भाँति होना चाहिये ?   
हो शान्त सोचो तो भला क्या योग्य है तुमको यही।  
हा ! हा ! तुम्हारी विकलता जाती नहीं मुझसे सही।।  
वीर-स्नुषा तुम वीर-रमणी, वीर-गर्भा हो तथा,  
आश्चर्य, जो मम रण-गमन से हो तुम्हें फिर भी व्यथा !  
हो जानती बातें सभी कहना हमारा व्यर्थ है,  
बदला न लेना शत्रु से कैसा अधर्म अनर्थ है ?  
निज शत्रु का साहस कभी बढ़ने न देना चाहिए,   
बदला समर में वैरियों से शीघ्र लेना चाहिए समुचित सदा,  
वर-वीर क्षत्रिय-वंश का कर्त्तव्य है यह सर्वदा।   
इन कौरवों ने हा ! हमें संताप कैसे हैं दिए,   
सब सुन चुकी हो तुम इन्होंने पाप जैसे हैं किए !  
फिर भी इन्हें मारे बिना हम लोग यदि जाते रहें,  
तो सोच लो संसार भर के वीर हमसे क्या कहें ?

जिस पर हृदय का प्रेम होता सत्य और समग्र है,   
उसके लिए चिन्तित तथा रहता सदा वह व्यग्र है।   
होता इसी से है तुम्हारा चित्त चंचल हे प्रिये !  
यह सोचकर सो अब तुम्हें शंकित न होना चाहिए—  
रण में विजय पाकर प्रिये ! मैं शीघ्र आऊँगा यहाँ,  
चिन्तित न हो मन में, न तुमको भूल जाऊँगा वहाँ !  
देखो, भला भगवान ही जब हैं हमारे पक्ष में,  
जीवित रहेगा कौन फिर आकर हमारे लक्ष में ?’’  
यों धैर्य देकर उत्तरा को, हो विदा सद्भाव से !  
वीराग्रणी अभिमन्यु पहुँचा सैन्य में अति चाव से।  
स्वर्गीय साहस देख उसका सौ गुने उत्साह से,  
भरने लगे सब सैनिकों के हृदय हर्ष-प्रवाह से।।  
फिर पाण्डवों के मध्य में अति भव्य निज रथ पर चढ़ा,  
रणभूमि में रिपु सैन्य सम्मुख वह सुभद्रा सुत बढ़ा।  
पहले समय में ज्यों सुरों के मध्य में सजकर भले;  
थे तारकासुर मारने गिरिनन्दिनी-नन्दन चले।।  
वाचक ! विचारो तो जरा उस समय की अद्भुत छटा  
कैसी अलौकिक घिर रही है शूरवीरों की घटा।   
दुर्भेद्य चक्रव्यूह सम्मुख धार्तराष्ट्र रचे खड़े,   
अभिमन्यु उसके भेदने को हो रहे आतुर बड़े।।  
तत्काल ही दोनों दलों में घोर रण होने लगा,  
प्रत्येक पल में भूमि पर वर वीर-गण सोने लगा !  
रोने लगीं मानों दिशाएँ हो पूर्ण रण-घोष से,  
करने लगे आघात सम्मुख शूर-सैनिक रोष से।।

इस युद्ध में सौभद्र ने जो की प्रदर्शित वीरता,   
अनुमान से आती नहीं उसकी अगम गम्भीरता।  
जिस धीरता से शत्रुओं का सामना उसने किया,  
असमर्थ हो उसके कथन में मौन वाणी ले लिया।  
करता हुआ कर-निकर दुर्द्धर सृष्टि के संहार को,  
कल्पान्त में सन्तप्त करता सूर्य ज्यों संसार को-  
सब ओर त्यों ही छोड़कर जिन प्रखरतर शर-जाल को,  
करने लगा वह वीर व्याकुल शत्रु-सैन्य विशाल को !  
शर खींच उसने तूण से कब किधर सन्धाना उन्हें;  
बस बिद्ध होकर ही विपक्षी वृन्द ने जाना उन्हें।  
कोदण्ड कुण्डल-तुल्य ही उसका वहाँ देखा गया,  
अविराम रण करता हुआ वह राम सम लेखा गया।  
कटने लगे अगणित भटों के रण्ड-मुण्ड जहाँ तहाँ,  
गिरने लगे कटकर तथा कर-पद सहस्त्रों के वहाँ।  
केवल कलाई ही कौतूहल-वश किसी की काट दी,  
क्षण मात्र में ही अरिगणों से भूमि उसने पाट दी।  
करता हुआ वध वैरियों का वैर शोधन के लिए,  
रण-मध्य वह फिरने लगा अति दिव्यद्युति धारण किए।  
उस काल सूत सुमित्र के रथ हाँकने की रीति से,   
देखा गया वह एक ही दस-बीस-सा अति भीति से।  
उस काल जिस जिस ओर वह संग्राम करने को क्या,  
भगते हुए अरि-वृन्द से मैदान खाली हो गया !  
रथ-पथ कहीं भी रुद्ध उसका दृष्टि में आया नहीं;  
सम्मुख हुआ जो वीर वह मारा गया तत्क्षण वहीं।

**ज्यों भेद जाता भानु का कर अन्धकार-समूह को**

वह पार्थ-नन्दन घुस गया त्यों भेद चक्रव्यूह को।  
थे वीर लाखों पर किसी से गति न उसकी रुक सकी,  
सब शत्रुओं की शक्ति उसके सामने सहसा थकी।।  
पर साथ भी उसके न कोई जा सका निज शक्ति से,  
था द्वार रक्षक नृप जयद्रथ सबल शिव की शक्ति से।  
अर्जुन बिना उसको न कोई जीत सकता था कहीं,  
थे किन्तु उस संग्राम में भवितव्यता-वश वे नहीं।।  
तब विदित कर्ण-कनिष्ठ भ्राता बाण बरसा कर बड़े,  
‘‘रे खल ! खड़ा रह’’ वचन यों कहने लगा उससे कड़े।  
अभिमन्यु ने उसको श्रवण कर प्रथम कुछ हँसभर दिया।  
फिर एक शर से शीघ्र उसका शीश खण्डित कर दिया।  
यों देख मरते निज अनुज को कर्ण अति क्षोभित हुआ,  
सन्तप्त स्वर्ण-समान उसका वर्ण अति शोभित हुआ,   
सौभद्र पर सौ बाण छोड़े जो अतीव कराल थे,   
अतः ! बाण थे वे या भयंकर पक्षधारी व्याल थे।।   
अर्जुन-तनय ने देख उनको वेग से आते हुए,   
खण्डित किया झट बीच में ही धैर्य दिखलाते हुए,  
फिर हस्तलाघव से उसी क्षण काट के रिपु चाप को,  
रथ, सूत्र, रक्षक नष्ट कर सौंपा उसे सन्ताप को।  
यों कर्म को हारा समझकर चित्त में अति क्रुद्ध हो,  
दुर्योधनात्मक वीर लक्ष्मण या गया फिर युद्ध को।  
सम्मुख उसे अवलोक कर अभिमन्यु यों कहने लगा,   
मानो भयंकर सिन्धु-नद तोड़कर बहने लगा-  
‘‘तुम हो हमारे बन्धु इससे हम जताते हैं तुम्हें,  
मत जानियो तुम यह कि हम निर्बल बताते हैं तुम्हें,  
अब इस समय तुम निज जनों को एक बार निहार लो,  
यम-धाम में ही अन्यथा होगा मिलाप विचार लो।’’  
उस वीर को, सुनकर वचन ये, लग गई बस आग-सी,  
हो क्रुद्ध उसने शक्ति छोड़ी एक निष्ठुर नाग सी।।  
अभिमन्यु ने उसको विफल कर ‘पाण्डवों की जय’ कही  
फिर शर चढ़ाया एक जिसमें ज्योति-सी थी जग रही।  
उस अर्धचन्द्राकार शर ने छूट कर कोदण्ड से,  
छेदन किया रिपु-कण्ठ तत्क्षण फलक धार प्रचण्ड से,  
होता हुआ इस भाँति भासित शीश उनका गिर पड़ा,   
होता प्रकाशित टूट कर नक्षत्र ज्यों नभ में बड़ा।।  
तत्काल हाहाकार-युत-रिपु-पक्ष में दुख-सा छा गया।   
फिर दुष्ट दुःशासन समर में शीघ्र सम्मुख आ गया।  
अभिमन्यु उसको देखते ही क्रोध से जलने लगा,  
निश्वास बारम्बार उसका उष्णतर चलने लगा।  
रे रे नराधम नारकी ! तू था बता अब तक कहाँ ?  
मैं खोजता फिरता तुझे सब ओर कब से कहूँ यहाँ।  
यह देख, मेरा बाण तेरे प्राण-नाश निमित्त है,  
तैयार हो, तेरे अघों का आज प्रायश्चित है।  
अब सैनिकों के सामने ही आज वध करके तुझे,  
संसार में माता-पिता से है उऋण होना मुझे।  
मेरे करों से अब तुझे कोई बचा सकता नहीं।  
पर देखना, रणभूमि से तू भाग मत जाना कहीं।

**कह यों वचन अभिमन्यु ने छोड़ा धनुष से बाण को**

रिपु भाल में वह घुस गया झट भेद शीर्ष-त्राण को,  
तब रक्त से भीगा हुआ वह गिर पड़ा पाकर व्यथा,   
सन्ध्या समय पश्चिम-जलधि में अरुण रवि गिरता यथा   
मूर्च्छित समझ उसको समर से ले गया रथ सारथी,  
लड़ने लगा तब नृप बृहद्बल उचित नाम महारथी।  
कर खेल क्रीड़ासक्त हरि ज्यों मारता करि को कभी,  
मारा उसे अभिमन्यु ने त्यों छिन्न करके तनु सभी।।  
उस एक ही अभिमन्यु से यों युद्ध जिस जिस ने किया।  
मारा गया अथवा समर से विमुख होकर जिया।  
जिस भाँति विद्युतद्दाम से होती सुशोभित घन-घटा,  
सर्वत्र छिटकाने लगा वह समर में शस्त्रच्छटा।।  
तब कर्ण द्रोणाचार्य से साश्चर्य यों कहने लगा-  
‘‘आचार्य देखो तो नया यह सिंह सोते से जगा।  
रघुवर-विशिख से सिन्धु सम सब सैन्य इससे व्यस्त हैं !  
यह पार्थ-नन्दन पार्थ से भी धीर वीर प्रशस्त है !  
होना विमुख संग्राम से है पाप वीरों को महा,  
यह सोचकर ही इस समय ठहरा हुआ हूँ मैं यहाँ।  
जैसे बने अब मारना ही योग्य इसको है यहीं,  
सच जान लीजे अन्यथा निस्तार फिर होगा नहीं।’’  
वीराग्रणी अभिमन्यु ! तुम हो धन्य इस संसार में,  
शत्रु भी यों मग्न हों जिसके शौर्य-पारावार में,   
होता तुम्हारे निकट निष्प्रभ तेज शशि का, सूर का,  
करते विपक्षी भी सदा गुण-गान सच्चे सूर का।   
  
तब सप्त रथियों ने वहाँ रत हो महा दुष्कर्म में -   
मिलकर किया आरम्भ उसको बिद्ध करना मर्म में -   
कृप, कर्ण, दु:शासन, सुयोधन, शकुनि, सुत-युत द्रोण भी;  
उस एक बालक को लगे वे मारने बहु-विध सभी ||  
अर्जुन-ताने अभिमन्यु तो भी अचल सम अविचल रहा,  
उन सप्त राथियोंका वहाँ आघात उसने सब सहा |  
पर एक साथ प्रहार-करता हो चतुर्दश कर जहाँ,  
युग कर कहो, क्या क्या यथायथ कर सके विक्रम वहाँ ?  
कुछ देर में जब रिपु-शरों से अश्व उसके गिर पड़े,  
तब कूद कर रथ से चला वह, थे जहाँ वे सब खड़े |  
जब तक शरीरागार में रहते ज़रा भी प्राण हैं,  
करते समर से वीरजन पीछे कभी न प्रयाण हैं ||  
फिर नृत्य-सा करता हुआ धन्वा लिए निज हाथ में,  
लड़ने लगा निर्भय वहाँ वह शूरता के साथ में |  
था यदपि अन्तिम दृश्य यह उसके अलौकिक कर्म का,  
पर मुख्या परिचय भी यही था वीरजन के धर्म का ||  
होता प्रविष्ट मृगेंद्र-शावक ज्यों गजेन्द्र-समूह में,  
करने लगा वह शौर्य त्यों उन वैरियों के व्यूह में |  
तब छोड़ते कोदण्ड से सब ओर चंड-शरावली,  
मार्तण्ड-मण्डल की उदय की छवि मिली उसको भली ||  
यों विकत विक्रम देख उसका धैर्य रिपु खोने लगे,  
उसके भयंकर वेग से अस्थिर सभी होने लगे |  
हँसने लगा वह वीर उनकी धीरता यह देख के,  
फिर यों वचन कहने लगा तृण-तुल्य उनको लेख के -  
  
"मैं वीर तुम बहु सहचरों से युक्त विश्रत सात हो,  
एकत्र फिर अन्याय से करते सभी आघात हो |  
होते विमुख तो भी अहो! झिलता न मेरा वार है,  
तुम वीर कैसे हो, तुम्हें धिक्कार सौ-सौ बार है |"  
उस शूर के सुन यों वचन बोला सुयोधन आप यों -  
"है काल अब तेरा निकट करता अनर्थ प्रलाप क्यों?  
जैसे बने निज वैरियों के प्राण हरना चाहिए,  
निज मार्ग निष्कंटक सदा सब भाँति करना चाहिए ||"  
"यह कथन तेरे योग्य ही है," प्रथम यों उत्तर दिया,  
खर-तर-शरों से फिर उसे अभिमन्यु ने मूर्छित किया |  
उस समय ही जो पार्श्व से छोड़ा गया था तान के,  
उस करना-शर ने चाप उसका काट डाला आन के ||  
तब खींचकर खर-खड्ग फिर वह रत हुआ रिपु-नाश में,  
चमकीं प्रलय की बिजलियाँ घनघोर-समराकाश में |  
पर हाय! वह आलोक-मण्डल अल्प ही मण्डित हुआ,  
वंचक-विपक्षी वृन्द से वह खड्ग भी खण्डित हुआ |  
यों रित्त-हस्त हुआ जहाँ वह वीर रिपु-संघात में,  
घुसने लगे सब शत्रुओं के बाण उसके गात में |  
वह पाण्डु-वंश प्रदीप यों शोभी हुआ उस काल में -  
सुंदर सुमन ज्यों पड़ गया हो कंटकों के जाल में ||  
संग्राम में निज-शत्रुओं की देखकर यह नीचता  
कहने लगा वह यों वचन दृग युग-करों से मींचता -  
"नि:शस्त्र पर तुम वीर बनकर वार करते हो अहो!  
है पाप तुमको देखना भी पामरों! सम्मुख न हो!!  
  
**दो शस्त्र पहले तुम मुझे, फिर युद्ध सब मुझसे करो**

यों स्वार्थ-साधन के लिए मत पाप-पथ में पड़ धरो |  
कुछ प्राण-भिक्षा मैं न तुमसे माँगता हूँ भीति से,  
बस शस्त्र ही मैं चाहता हूँ धर्म-पूर्वक नीति से ||  
कर में मुझे तुम शस्त्र देकर फिर दिखाओ वीरता,  
देखूँ, यहाँ मैं फिर तुम्हारी धीरता, गंभीरता |  
हो सात क्या, सौ भी रहो तो भी रुलाऊँ मैं तुम्हें,  
कर पूर्ण रण-लिप्सा अभी क्षण में सुलाऊँ मैं तुम्हें ||  
नि:शस्त्र पर आघात करना सर्वथा अन्याय है |  
स्वीकार करता बात यह सब शूर-जन समुदाय है |  
पर जानकर भी हा! इसे आती न तुमको लाज है,  
होता कलंकित आज तुमसे शूरवीर-समाज है ||  
हैं नीच ये सब शूर पर 'आचार्य!" तुम आचार्य हो,  
वरवीर-विद्या-विज्ञ मेरे तात-शिक्षक आर्य हो |  
फिर आज इनके साथ तुमसे हो रहा जो कर्म है,  
मैं पूछता हूँ, वीर का रण में यही क्या धर्म है ?  
या सत्य है कि अधर्म से मैं निहित होता हूँ अभी,  
पर शीघ्र इस दुष्कर्म हा तुम दण्ड पाओगे सभी |  
क्रोधाग्नि ऐसी पाण्डवों की प्रज्ज्वलित होगी यहाँ,  
तुम शीघ्र उसमें भस्म होगे तूल-तुल्य जहाँ तहां ||  
मैं तो अमर होकर यहाँ अब शीघ्र सुरपुर को चला,  
पर याद रखो, पाप का होता नहीं है फल भला |  
तुम और मेरे अन्य रिपु पामर कहावेंगे सभी,  
सुनकर चरित मेरा सदा आँसू बहावेंगे सभी ||  
हे तात! हे मातुल! जहाँ हो प्रणाम तुम्हें वहीं,  
अभिमन्यु का इस भाँति मरना भूल न जाना कहीं!"  
कहता हुआ वह वीर यों रण-भूमि में फिर गिर पड़ा,  
हो भंग श्रृंग सुमेरु गिरी का गिर पड़ा हो ज्यों बड़ा ||  
इस भाँति उसको भूमि पर देखा पतित होते यदा,  
दु:शील दु:शासन ताने ने शीश में मारी गदा |  
दृग बंद कर वह यशोधन सर्वदा को सो गया,  
हा! एक अनुपम रत्न मानो मेदिनी का खो गया ||  
  
हे वीरवर अभिमन्यु! अब तुम हो यदपि सुर-लोक में,  
पर अंत तक रोते रहेंगे हम तुम्हारे शोक में |  
दिन-दिन तुम्हारी कीर्ति का विस्तार होगा विश्व में,  
तब शत्रुओं के नाम पर धिक्कार होगा विश्व में ||